मुक्तिबोध के काव्य में विद्रोह व क्रांति के स्वर

डॉ. कमलकिषोर गुप्ता

मुक्तिबोध का समूचा रचना संसार, षोशित, पीडित और दलित मानवता को समर्पित है। समसामयिकी अर्थ व्यवस्था के प्रति कवि सर्वत्र आक्रोष पूर्ण मुद्रा में दिखाई देता है। कवि की मान्यता है कि वर्तमान सामाजिक ढांचा पूरी तरह से चरमरा गया है उनकी नींव में टिकी चूले सड गल चुकी है फलतः कवि समाज में आमूलचूल परिवर्तन का पक्षधर है कवि एक ऐसे समाज का निर्माण का आकांक्षी है जो षोशण, उत्पीडन, वेदना, दुख अवसाद से पूर्णतः मुक्त हो, जिसके सदस्य स्वाभिमान और आत्मसम्मान के प्रति जो जागरूक दिखार्द पडे।

मुक्तिबोध के विद्रोही तेवर में उनकी चिंतनषील दार्षनिक मानसिकता के प्रखर तेवर नाना काव्य रूप में प्रकट हुए है उनकी अधिकांष कविताओं में लड़खड़ाती जिंदगी की छटपटाहट तो है ही, साथ ही षोशण का प्रबल विरोध भी देखने को मिलता है। मुक्तिबोध ने अपने कविताओं के माध्यम से समाज में व्याप्त षोशण वृत्ति एवं धार्मिक सामाजिक कुरीतियों पर निर्भिकता पूर्वक प्रहार किया है। जो वर्शा तक पिसते समाज का मध्यवर्गीय जन विद्रोह और आक्रोष का पक्षधर बन गया है।

अपने काव्य में मुक्तिबोध ने आधुनिक जीवन मूल्यों की सषक्त अभिव्यक्ति की है। इसके लिए उन्होंने नये विशय, नये संदर्भ चुने है तथा आधुनिक भाव–बोध की अभिव्यक्ति की है।

मुक्तिबोध ने आधुनिक समाज की विभिन्नता विवषता और विसंगति को चित्रित करने के लिए ऐसे विशयों को लिया है जो जीवन के यथार्थ से अपना संबंध रखने तथा जो बिल्कुल नये है। मुक्तिबोध द्वारा गृहीत नये सन्दर्भो के विशय में ओमप्रकाष अग्रवाल अपने विचार प्रस्तुत करते है – "सामाजिक जीवन में गतिमान द्वन्द्वात्मक विभेदो के चुभते हुए अस्तित्व को सहकर और संघर्श के आघातों को पूर्णतया झेलकर गठित होने वाले प्रतिनिधिक व्यक्ति का समुचित आभास हमें मुक्तिबोध के काव्य में मिलता है।"

मुक्तिबोध ने निम्न–मध्यवर्ग की उस जीवन–दृश्टि का चित्रण किया है जो वर्ग–संघर्श की आग में पड़कर क्रांति की भावना को पनपाती है। उसके लिए उन्होने विविध दृष्य के सजीव चित्र उतारे है। मुक्तिबोध की कविता में बाह्य और अर्न्तद्वन्द्वों का सुंदर सामंजस्य दिखाई देता है। जहाँ बाह्य जगत् अन्तर्मन में बिंबित होता है, वहाँ वह मन की गुत्थियों को लेकर बाहर प्रकट होता है। इस प्रकार मुक्तिबोध में अंतःकरण की गुथियों का चित्रण वस्तु की विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से किया है – यह चित्रण प्रायः बौद्धिक स्तर पर किया गया है –

"जितना ही तीव्र है द्वन्द्व क्रियाओं का घटनाओं का
बाहरी दुनिया में

उतनी ही तेजी से भीतरी दुनियाँ में
चलता है द्वन्द्व।"[1]

मुक्तिबोध के काव्य में हमको जिस आत्मसंघर्श की अभिव्यक्ति मिलती है, वह वस्तुतः नयी कविता की आधारषिला है। यह आत्मसंघर्श वस्तुतः को मानव की ही कहानी है। मुक्तिबोध के काव्य में हमको आत्म चेतन सामंजस्य दिखाई देता है। यही वस्तुतः नयी कविता के मानव वाद का द्वार है और मुक्तिबोध नयी कविता के कवि है।

नयी कविता की सामान्य प्रवृत्तियों का श्रीगणेष जिन कवियों में दिखाई देता है उनमें मुक्तिबोध भी एक है। कुछ समालोचक तो षैलीगत नयेपन का षुभारंभ मुक्तिबोध से मानते है; यथा मुक्तिबोध ने हिन्दी कविता मे नये विशय नये वस्तु का तथा नयी काव्य षैली का प्रयोग किया, नये काव्य की समाजिक तथा तार्किक पृश्ठभूमि को निर्मित किया। इस संदर्भ में डॉ. राजेष्वर दयाल सक्सेना कहते है, "नयी कविता का काव्यषास्त्र और नये ललित बोध के सौंदर्य षास्त्र का प्रारंभ मुक्तिबोध से होता है।"

मानवतावाद की अभिव्यक्ति मुक्तिबोध के काव्य में परिलक्षित होती है। मानव के लिए कुछ कर गुजरने की छटपटाहट अत्यंत सषक्त रूप में मुक्तिबोध के काव्य में अभिव्यक्त हुई है यथा –

लेकिन, दबी धुकधुकियों,
सोचो तो कि
अपनी ही आँखों के सामने
खूब हम खेत रहे।
खूब काम आए हम।"[2]

मुक्तिबोध ने लघुमानव को खोजा भी है, तथा उसके प्रति आस्था भी व्यक्त की है। 'ओ नागात्मन्, फणिधर' नामक कविता में लघु मानव की खोज के लिए वे अपनी संवेदना का आव्हान करते है। यहाँ 'फणिधर' कोई सर्प न होकर स्वयं कवि की संवेदना अथवा आत्मचेतना ही है।

जीवन में यथार्थ ज्वलनषील मूल्यों को
खोज लेने की छटपटाहट –
लहराओं लहराओ नागात्मक कविताओं'

मुक्तिबोध के व्यक्तिगत जीवन को देखते हुए यह बात बडी आसानी से कही जा सकती है कि उनका व्यक्तित्व सदैव उन्मुक्त रहा है वे घोर श्रमरत होते हुए भी निर्द्वन्द्व रहे है। मुक्तिबोध आज जिन्दा नहीं है लेकिन उनका यह जीवन तथ्य इस बात को भी प्रकाषित करता है, कि उसके स्वभाव की उन्मुक्तता तो उनके काव्य में है

जिसमें तो द्वंद्व ही द्वंद्व है कुछ भी सपाट और सीधा नही है। षायद इसी सत्य को मुक्तिबोध ने अपनी एक कविता 'दिमागी गुहान्धकार का औराँग–उटाँग में उद्घाटित किया है –

"स्वप्न के भीतर एक स्वप्न
विचार धारा के भीतर और
ग ग ग ग
मस्तिश्क के भीतर एक मस्तिश्क
उसके भी अंदर एक और कक्ष
ग ग ग ग
और उस संदूक भीतर कोई बंद है
यक्ष
या कि औराँग उटाँग हाय
अरे! डर है
न औराँग उटाँग कही छूट जाए,
कही प्रत्यक्ष न यक्ष हो।"[3]

उपरोक्त पंक्तियों का तात्पर्य यह है कि मुक्तिबोध का काव्य पर्तों की दुनिया है – जो इन पर्तों को धीरे–धीरे खोलने में समर्थ होगा, वही इनके काव्य का सच्चा मर्मज्ञ होगा। उसे खाले बिना मुक्तिबोध और उसके काव्यत्व को पाता नितान्त असंभव है। द्वंद्व के भीतर भी द्वंद्व यह मुक्तिबोध के काव्य में द्वंद्व से पुरिपुश्ट एक घटना चक्र की व्यंजना मिलेगी।

सर्वप्रथम मुक्तिबोध की कविताएँ तार सप्तक में प्रकाषित हुई इसका प्रकाषन 1943 मे हुआ जिसके संपादक अज्ञेय जी थे। जिसमें से एक गजानन माधव मुक्तिबोध भी थे। इसमें उनकी 17 कविताएँ संकलित है उस समय उनकी आयु 26 वर्श की थी वह धीरे–धीरे अपनी ओर आकर्शित करते जा रहे थे। उनकी काव्य चेतना का विकास नवीन खेमें के कवियों में प्रायः सभी से अलग और विलक्षण रहा है। कवि के अपने व्यक्तित्व के समान। 'ध्रूव तारा' नामक कविता इसी सत्य की ओर संकेत करती है –

"वे नापने वाले लिखे उसके उदय और अस्त की गाथा
सदा ही ग्रहण का विवरण।
किंतु वह तो चला जाता
व्योम का राही,
भले ही दृश्टि के बाहर रहे उसका विपथ ही
बना जाता।"

कवि मुक्तिबोध का व्यक्तित्व अन्य कवियों से अलग व विलक्षण रहने के बावजूद उनका जीवन नितांत उपेक्षित संत्रस्त्र और मानसिक रूप से द्वंद्व ग्रस्त भी अधिकाधिक होता जा रहा था इस संबंध में मुक्तिबोधस ने तारसप्तक' के जीवन तथ्य में लिखा है –

"उन दिनों भी एक मानसिक संघर्श था मेरे बाल मन की पहली भूख सौंदर्य और दूसरी विष्वमानव का सुख–दुख इन दोनों का संघर्श मेंरे साहित्यिक जीवन की पहली उलझन थी। इसका स्पश्ट वैज्ञानिक समाधान मुझे किसी से न मिला। परिणाम स्वरूप इन अनेक द्वंद्वों के कारण एक ही काव्यविशय नही रह सका।"[4]

षमषेर बहादुर के अनुसार "1943 में जब यह ऐतिहासिक संग्रह प्रकाषित हुआ उसने एक लंबे विवाद को जन्म दिया जो किसी न किसी संदर्भ या अर्थ में अब भी जारी है। इस संग्रह में मुक्तिबोध का योग उस समय सबसे प्रौढ चाहे न हो मगर सबसे ज्यादा मौलिक था। दुरुह होते हुए बौद्धिक, बौद्धिक होते हुए भी रोमानी।"[5]

मुक्तिबोध को परिस्थितियों का मार एवं उनकी बन गई मानसिकता ने उन्हें एक जगह टिकने लायक षायद छोडा ही नही। इस कारण गुप्त अषांति ने कवि के मन के अंदर घर किया हुआ है और वह उससे मुक्ति प्राप्त करने के लिए छटपटा रहा है 'पूंजीवादी समाज के प्रति इस संग्रह की एक ऐसी कविता है जिसमें कवि ने इस प्रकार की व्यवस्था के लिए कहा है–

"तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ।
तेराध्यास केवल एक तेरा अर्थ।"

'तार सप्तक में संकलित मुक्तिबोध की कविताओं में आत्मद्वंद्व–विद्रोह, उलझाव, लक्ष्यान्वेशण, संत्रास और भय आदि के वे सारे तत्व प्राप्त हो जाते है जो मुक्तिबोध के काव्य में आगे व्यापकता पा सके है।

'चांद का मुँह टेढ़ा है' यह काव्य संकलन कवि के मरण के उपरांत प्रकाषित हो सका। जिसका संकलन श्रीकांत वर्मा ने किया है। इस संग्रह में मुक्तिबोध की 28 कविताओं को संकलित किया गया है। अधिकांष कविताएँ 1954 से 64 के बीच लिखि हुई है अधिकतर कविताएँ लंबी है और मानो अपने साथ पूरा कथानक लेकर चलती है। उदाहरणार्थ – 'अंधेरे में'। 'अंधेरे में' एक ऐसी कविता है जो पूरे पचास पृश्ठों की है। इसके कथानक के संबंध में षमषेर बहादुर ने लिखा है – "मुक्तिबोध षुक्रवारी में तिलक की मूर्ति के पास की गली में रहा करते थे एम्प्रेस मिल के मजदूरों पर जब गोली चली तो रिपोर्टर की हैसियत से वे घटना स्थल पर मौजूद थे। उन्होंने सिरोंका फुटना और खून का बहना अपनी आँखों से देखा।[6]'अंधेरे में' षीर्शक उनकी सषक्त और मार्मिक कविता उनके नागपुर जीवन के बहुत सारे संदर्भ अपने अंदर समेटे हुए है और यही कविता नवीन आलोचना के प्रकाष में आधुनिक युग की सबसे अच्छी कविता स्वीकार की जाने लगी है। इस विशय में षमषेर बहादुर लिखते है –'अंधेरे में' मुक्तिबोध की एक ऐसी कविता है जिसमें उनकी काव्यात्मक षक्ति के अनेक तत्व घुल–मिल कर एक महान रचना की सुश्टि

करते है, जो रोमानी होते हुए भी अत्यधिक यथार्थवादी और एकदम आधुनिक है और किसी भी कसौटी पर उसकाक जाँचा जाए, मै कहूँगा किवह आधुनिक युग की कविताओं में सर्वोपरि ठहरती है।"[7]

उसी प्रकार 'अंधेरे में' कविता में तथाकथित आंदोलनरत, मुखौटे लगाये कवि नेताओं पर गहरा और पैना व्यंग्य है जो अंधेरे के सिवा कहाँ मिल सकता है –

"गहन मृतात्माएँ इसी नगर की
हर रात जुलुस में चलती
परंतु दिन में
बैठती है मिलकर करती हुई शडयंत्र
विभिन्न दफ्तरों, कार्यालयों, केंद्रों में, घरों में।"[8]

मुक्तिबोध वर्तमान समाज की दोहरी व्यवस्था के प्रति सजग है उनका मानना है कि 'हाथी के दाँत देखने के और खाने के और ही है' जैसे कहा जाता है वर्तमान पीढ़ी के लोग भी कुछ इसी प्रकार का जीवन जी रहे है। जिसका अपना कोई अस्तित्व है ही नही हर कोई किसी न किसी शडयन्त्र का षिकार है।

मुक्तिबोध का काव्य जीवन दर्षन से ओतप्रोत है। उनकी रचनाओं में संघर्श, क्रांति और चेतना को वाणी दी है। उनका काव्य वर्गहीन समाज की स्थापना के प्रति अधिक सचेश्ट रहा है। कवि की तमाम रचनाओं में नाना प्रकार के संकट एवं मुक्ति का भाव उसके मन मस्तिश्क को उद्धेलित करता रहा है। यातना की यंत्रणा जितनी सघन होती है उसकी भाशा भी उतनी प्रखर होती है। इस संबंध में देवराज पथिक कहते है, "मुक्तिबोध के व्यक्तिगत जीवन की परिवेषगत वैशम्य और कचोटते प्रहारों ने उनकी वाणी को भरपूर गर्मी दी है। परिस्थितियों की आग में मुक्तिबोध का आत्मसंघर्श खूब तपा है, जिसकी गर्माहट ने ही हिंदी साहित्य को 'चांद का मुँह टेढ़ा है' जैसी सषक्त रचना प्रदान की है।[9]

चेतना और चिंतन का यह विरातल जो एक प्रकार से ऊबड–खाबड सा लगता है। मुक्तिबोध को क्यों और कैसे प्राप्त हो सका? इस प्रष्न का उत्तर हम षमषेर बहादुर के निम्नलिखित षब्दों में से खोज सकते है –

"क्या बात है यह? और क्यों? मुक्तिबोध ने सबकुछ अपने ऊपर झेला था। अंग्रेजी षासन युद्ध कला सामन्ती सांप्रदायिक प्रतिक्रिया। प्रकाषकों की व्यावसायिक वृत्ति की चरमसीमा मुक्तिबोध न 'हंस' की संपादनी मे कुछ कर सके, न 'नया खून' (नागपुर) में ही कुछ बना सके सिवाए विरोधियों और उपेक्षा करने वालों की संख्या बढाने के। आकाषवाणी में भी उनकी अव्यवहारिक सरलता और सुनेपन ने उन्हें टिकने नही दिया। जहाँ गये वह हलचलों के रेले में कुछ न कुछ खोते ही गए। हासिल किया उन्होंने केवल गहरा काव्यमर्म। उनका सारा जीवन बाहर से असफल, रिक्त किंतु अंदर से रचनाकार की प्रतिभा से खूब समृद्ध हो चुका था। जीवन के बन बीहड में जो पलाष के क्षेत्र सुलग उठे थे, उनमें मानव रक्त की पवित्र गंध थी और एक निर्मलता।"[9]

अंत में उपरोक्त समूचे विवेचन के निश्कर्श स्वरूप हम कह सकते है कि कविवर मुक्तिबोध ने खुली आँखों से जगत–जीवन को देखा, भोगा और घुट–घुटकर भी जिया। जैसे हमारा दृष्य जगत–जीवन स्पश्ट है, यथार्थ उसी प्रकार मुक्तिबोध के जागतिक चिंतन और षास्त्रीय चिंतन के धरातल एकदम स्पश्ट बल्कि दृष्य और स्पृष्य है। उनमें किसी प्रकार का लाभ लपेट नहीं है। वह सब उनके अनवरत अध्ययन, चिंतन मनन और अन्वेशण ग्रहण का ही परिणाम है। अतः तथ्य और सत्य के एकदम निकट है और इसी कारण प्रभावी है – चमत्कारिक यद्यपि नहीं है।

डॉ. कमलकिषोर एस. गुप्ता

सहायक प्राध्यापक एवम् भाशाविभागाध्यक्ष

दादारामचंद्र बाखरूसिंधु महाविद्यालय

पाँचपावली, नागपुर – 17

संदर्भ :

1 ओमप्रकाष अग्रवाल – मुक्तिबोध के साहित्य का मुल्यांकन – पृ.22
2 मुक्तिबोध – चांद का मुँह टेढा है – पृ. 85
3 मुक्तिबोध – चांद का मुँह टेढा है – पृ. 44
4 मुक्तिबोध – तारसप्तक का जीवन तथ्य
5 षमषेर बहादुर – भूमिका – चांद का मुँह टेढा है – पृ. 17
6 षमषेर बहादुर – भूमिका – चांद का मुँह टेढा है – पृ. 19
7 षमषेर बहादुर – भूमिका – चांद का मुँह टेढा है – पृ. 27
8 मुक्तिबोध – अंधेरे में चांद का मुँह टेढा है – पृ. 66
9 षमषेर बहादुर – भूमिका – चांद का मुँह टेढा है – पृ. 22